राजर्षि
भाग 1

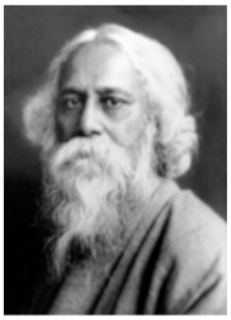

रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी ADDA

राजर्षि

भाग 1

https://www.hindiadda.com/rajarshi-part-i/

पहला परिच्छेद

भुवनेश्वरी मंदिर का पत्थर का घाट गोमती नदी में जाकर मिल गया है। एक दिन ग्रीष्म-काल की सुबह त्रिपुरा के महाराजा गोविन्दमाणिक्य स्नान करने आए हैं, उनके भाई नक्षत्रराय भी साथ हैं। ऐसे समय एक छोटी लडकी अपने छोटे भाई को साथ लेकर उसी घाट पर आई। राजा का वस्त्र खींचते हुए पूछा, "तुम कौन हो?"

राजा मुस्कराते हुए बोले, "माँ, मैं तुम्हारी संतान हूँ।"

लडकी बोली, "मुझे पूजा के लिए फूल तोड़ दो ना!"

राजा बोले, "अच्छा, चलो।"

अनुचर बेचैन हो उठे। उन्होंने कहा, "महाराज, आप क्यों जाएँगे, हम तोड़े दे रहे हैं।"

राजा बोले, "नहीं, जब मुझे कहा है, तो मैं ही तोड़ कर दूँगा।"

राजा ने उस लडकी के चेहरे की ओर ताका। उस दिन की निर्मल उषा के साथ उसके चेहरे का सादृश्य था। जब वह राजा का हाथ पकड़े मंदिर से सटे फूलों के बगीचे में घूम रही थी, तो चारों ओर के लता-पुष्पों के समान उसके लावण्य भरे चेहरे से निर्मल सौरभ का भाव प्रस्फुटित होकर प्रभात-कानन में व्याप्त हो रहा था। छोटा भाई दीदी का कपड़ा पकड़े दीदी के संग-संग घूम रहा था। वह एकमात्र दीदी को ही जानता है, राजा के साथ उसकी कोई बड़ी घनिष्ठता नहीं हुई।

राजा ने लडकी से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है बेटी?"

लडकी बोली, "हासी।"

राजा ने लड़के से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

लडका बड़ी-बड़ी आँखें फाड़े दीदी का मुँह ताकता रहा, कोई उत्तर नहीं दिया।

हासी ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा, "बोल-ना भैया, मेरा नाम ताता है।"

लडका अपने छोटे-से होंठ जरा-सा खोल कर गंभीर भाव से दीदी की बात की प्रतिध्वनि के समान बोला, "मेरा नाम ताता है।"

बोल कर दीदी का कपड़ा और कस कर पकड़ लिया।

हासी राजा को समझाते हुए बोली, "वो लडका है-ना, इसीलिए सब उसे ताता बुलाते हैं।"

छोटे भाई की ओर मुँह घुमा कर कहा, "अच्छा, बोल-तो मंदिर।"

लडके ने दीदी के मुँह पर ताक कर कहा, "लदन्द।"

हासी ने हँस कर कहा, "ताता मंदिर नहीं बोल पाता, बोलता है, लदन्द। - अच्छा, बोल-तो कढ़ाई।"

लडका गंभीर होकर बोला, "बलाई।"

हासी फिर हँस पड़ी, बोली, "हमारा ताता कढ़ाई नहीं बोल पाता, बोलता है, बलाई।"

कह कर चूमते-चूमते उसे परेशान कर डाला।

ताता दीदी की अचानक इतनी हँसी और इतने लाड-प्यार का कोई कारण नहीं खोज पाया, वह केवल बड़ी-बड़ी आँखें फाड़े देखता रहा। वास्तव में ही मंदिर और कढ़ाई शब्द के उच्चारण में उसकी पूरी-पूरी गलती थी, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता; ताता की आयु में हासी कभी भी मंदिर को लदन्द नहीं बोलती थी, वह मंदिर को बोलती थी, पालु और पता नहीं कढ़ाई को बलाई बोलती थी या नहीं, लेकिन कड़ी (घोंघे की प्रजाति के समुद्री प्राणी का ऊपरी आवरण) को बोलती थी, घयि, अतएव ताता के ऐसे विचित्र उच्चारण को सुन कर उसे बहुत हँसी आ जाएगी, इसमें आश्चर्य कैसा! ताता से जुडी अनेक घटनाएँ वह राजा को बताने लगी। एक बार एक बूढा आदमी कम्बल ओढ़ कर आया था, ताता ने उसे बताया था, भालू; ताता की ऐसी मंद बुद्धि है। और एक बार पेड़ पर लगे शरीफे के फलों को पक्षी समझ कर ताता ने अपने मोटे-मोटे छोटे-छोटे हाथों से ताली बजा कर उन्हें उड़ाने की चेष्टा की थी। ताता की दीदी ने विस्तृत उदाहरणों द्वारा पूरी तरह प्रमाणित कर दिया कि ताता हासी से बहुत छोटा है। ताता अपनी बुद्धि के परिचय की कथा नितांत अविचलित भाव से सुन रहा था, जितना समझ पाया, उसमें क्षोभ का तनिक भी कारण नहीं देख पाया। इस प्रकार उस दिन सुबह फूल चुनना समाप्त हुआ। जब छोटी लडकी को आँचल भर कर फूल दिए, तब राजा को लगा कि उनकी पूजा संपन्न हुई; इन दो सरल प्राणों के स्नेह का दृश्य देख कर, इस पवित्र हृदय की आशा को पूर्ण करते हुए फूल चुन कर देकर, मानो उनकी देवा-पूजा का काज संपन्न हुआ।

दूसरा परिच्छेद

उसके अगले दिन से नींद टूट जाने के बाद, सूर्य उगने पर भी राजा का प्रभात नहीं होता था; उनका प्रभात तभी होता होता था, जब वे दोनों छोटे भाई-बहनों का चेहरा देख लेते थे। वे प्रतिदिन उन लोगों को फूल चुन कर दे देते, तभी स्नान करते थे; दोनों भाई-बहन घाट पर बैठे उनका नहाना देखते रहते। जिस दिन प्रात: ये दो बालक-बालिका नहीं आते, उस दिन मानो उनकी पूजा-अर्चना सम्पूर्ण नहीं होती थी।

हासि और ताता का माँ-बाप कोई नहीं है। केवल एक चाचा है। चाचा का नाम केदारेश्वर है। ये दोनों बालक-बालिका ही उसके जीवन के एकमात्र सुख और संबल हैं।

एक वर्ष व्यतीत हो गया। अब ताता मंदिर बोल पाता है, लेकिन अब भी कढ़ाई बोलने पर बलाई ही बोलता है। वह अधिक बातें नहीं करता। गोमती नदी के किनारे नागकेशर के पेड़ के नीचे उसकी दीदी पैर फैलाए बैठी उसे जो भी कहानी सुनाती, वह उसे ही आँखें फाड़े अवाक होकर सुनता। उस कहानी का कोई सिर-पैर नहीं होता था; फिर भी वह क्या समझता था, वही जाने; कहानी सुन कर उस पेड़ के नीचे, उस सूर्य के प्रकाश में, उस मुक्त हवा में एक छोटे-से बालक के छोटे-से हृदय में कितनी बातें, कितनी छवियाँ उभरती थीं, हमें क्या पता! ताता अन्य किसी बालक के साथ नहीं खेलता था, बस, अपनी दीदी के संग छाया की तरह घूमता था।

आषाढ़ का महीना। सुबह से घनघोर बादल छाए हैं। अभी बारिश नहीं पड़ी है, किन्तु बारिश के आसार दिखाई दे रहे हैं। दूर देश की बारिश के छींटे लिए ठण्डी हवा बह रही है। गोमती नदी के जल और गोमती के आरपार के जंगल पर अँधेरे आसमान की छाया पड़ रही है। कल रात अमावस्या थी, कल भुवनेश्वरी की पूजा हो चुकी है।

यथा समय राजा हासि और ताता का हाथ पकड़े स्नान के लिए आ गए। रक्त-धारा की एक रेखा सफेद पत्थर के घाट की सीढ़ियों से बहते हुए जाकर जल में मिल गई है। कल रात जो एक सौ एक भैंसों की बलि दी गई है, उन्हीं का रक्त है।

रक्त की उस रेखा को देख कर हासि ने अचानक एक तरह से सकुचाते हुए हट कर राजा से पूछा, " पिताजी, यह किसका निशान है?"

राजा बोले, "रक्त का निशान है, बेटी"

उसने कहा, "इतना रक्त क्यों!" बालिका ने एक प्रकार से इतने कातर स्वर में पूछा, 'इतना रक्त क्यों' कि धीरे-धीरे राजा के हृदय में भी यही प्रश्न उठने लगा, 'इतना रक्त क्यों!' वे सहसा सिहर उठे। बहुत दिन से प्रतिवर्ष रक्त की धारा देखते आ रहे हैं, किन्तु एक छोटी बालिका का प्रश्न सुन कर उनके मन में उठने लगा, 'इतना रक्त क्यों!' वे उत्तर देना भूल गए। अन्यमनस्क भाव से स्नान करते-करते इसी प्रश्न पर विचार करने लगे।

हासि जल में आँचल भिगो कर सीढ़ियों पर बैठ कर धीरे-धीरे रक्त की रेखा पोंछने लगी, उसकी देखादेखी छोट-छोटे हाथों से ताता भी वही करने लगा। हासि का आँचल रक्त से लाल हो गया। जब तक राजा का स्नान निबटा, तब तक दोनों भाई-बहन ने मिल कर रक्त के निशान पोंछ डाले।

उसी दिन घर लौट कर हासि को ज्वर चढ़ आया। ताता निकट बैठ कर दोनों छोटी अँगुलियों से दीदी के मूँदे नेत्रों की पलकें खोलने की चेष्टा करते हुए बीच-बीच में पुकार रहा है, "दीदी!" , दीदी चौंक कर तनिक जाग जा रही है। "क्या है ताता," कह कर उसे निकट खींच रही है; उसकी आँखें फिर से नींद से भारी हो रही हैं। ताता बहुत देर तक चुपचाप दीदी के चेहरे की ओर देखता रहता है, कोई बात नहीं कहता। अंत में बहुत देर बाद धीरे-धीरे दीदी के गले से लिपट कर उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर आहिस्ता-आहिस्ता बोला, "दीदी, तू उठेगी नहीं?" दीदी ने चौंक कर जागते हुए उसे छाती से चिपटा कर कहा, "उठूँगी क्यों नहीं मेरे धन [1]!" किन्तु दीदी में उठने का और सामर्थ्य नहीं है। ताता के छोटे-से हृदय में मानो भारी अंधकार छा गया। ताता की पूरे दिन के खेलकूद के आनंद की आशा एकदम धुँधली पड़ गई। आकाश में घना अँधेरा है, घर के छप्पर पर धीर-धीरे बारिश की आवाज सुनाई पड़ रही है, आँगन का इमली का पेड़ बारिश में भीग रहा है, मार्ग में कोई पथिक नहीं है। केदारेश्वर एक वैद्य को साथ लेकर आया है। वैद्य ने नाड़ी-परीक्षा करके हालत देख कर अच्छा अनुभव नहीं किया।

उसके अगले दिन राजा ने स्नान करने आकर देखा, बालक-बालिका उनकी प्रतीक्षा में मंदिर में नहीं बैठे हैं। सोचा, इस मूसलाधार बारिश में वे नहीं आ पाए होंगे। स्नान-पूजा निबटा कर शिविका पर चढ़ कर वाहकों को केदारेश्वर की झोपड़ी पर चलने की आज्ञा दी। सभी सेवक आश्चर्य में पड़ गए, लेकिन राजा से कुछ नहीं कह पाए।

राजा की शिविका आँगन में पहुँचते ही झोपड़ी में अफरा-तफरी मच गई। उस अफरा-तफरी में सभी रोगी की बीमारी की बात भूल गए। केवल ताता नहीं हिला, वह अचेत दीदी की गोद के पास बैठा दीदी के कपड़े का एक किनारा मुँह में ठूँसे टुकुर-टुकुर देखता रहा।

राजा को झोपड़ी में आता देख ताता ने पूछा, "क्या हुआ है?"

बेचैन-हृदय राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया। ताता ने गर्दन झुकाए-झुकाए फिर पूछा, "दीदी को लग गई है?"

चाचा केदारेश्वर ने थोड़ा झुँझलाते हुए उत्तर दिया, "हाँ, लग गई है।"

ताता ने तुरंत दीदी के पास खिसक कर उसका चेहरा उठाने की चेष्टा करते हुए गले से लिपट कर पूछा, "दिदि, तोमार कोथाय नेगेछे?"(दीदी, तुम्हें कहाँ नगी (लगी) है?)

मन का अभिप्राय यही था कि उसी जगह फूँक मार कर, हाथ से सहला कर दीदी का सारा दर्द दूर कर देगा। लेकिन जब दीदी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उससे और नहीं सहा गया - दोनों छोटे-छोटे होंठ लगातार फूलने लगे, अभिमान में रो उठा। कल से बैठा है, एक भी बात क्यों नहीं! ताता ने क्या किया है, कि उसका ऐसा अनादर हो रहा है! राजा के सामने ताता का ऐसा व्यवहार देख कर केदारेश्वर परेशान हो उठा। वह झुँझलाते हुए ताता का हाथ पकड़ कर दूसरे कमरे में खींच ले गया। इतने पर भी दीदी कुछ नहीं बोली।

राज-वैद्य आकर संदेह प्रकट करके चला गया। राजा शाम को फिर हासि को देखने आए। उस समय लडकी प्रलाप में बक रही थी, "हे माँ, इतना रक्त क्यों!"

राजा ने कहा, "बेटी, मैं इस रक्त-धारा को रोक दूँगा।"

बालिका बोली, "आ भैया ताता, हम दोनों इस रक्त को पोंछ डालें।"

राजा ने कहा, "आओ बेटी, मैं भी पोंछता हूँ।"

संध्या के कुछ बाद ही हासि ने एक बार आँखें खोली थीं। चारों ओर एक बार ताक कर जैसे किसी को खोजा। तब ताता रो-रो कर दूसरे कमरे में सोया पड़ा था। मानो किसी को न देख पाकर हासि ने आँखें मूँद लीं। और आँखें नहीं खोलीं। दो-पहर रात के समय राजा की गोद में हासि की मृत्यु हो गई।

जब हासि को हमेशा के लिए झोपड़ी से ले जाया गया, तब ताता बेखबर सो रहा था। अगर जान पाता, तो शायद वह भी दीदी के साथ-साथ लघु परछाईं के समान चला जाता।

तीसरा परिच्छेद

राज-सभा बैठी है। भुवनेश्वरी देवी मंदिर का पुरोहित कार्यवश राज-दर्शन को आया है।

पुरोहित का नाम रघुपति है। इस देश में पुरोहित को चोंताई संबोधित किया जाता है। भुवनेश्वरी देवी की पूजा के चौदह दिन बाद देर रात को चौदह देवताओं की एक पूजा होती है। उस पूजा के समय एक दिन दो रात कोई भी घर से नहीं निकल सकता, राजा भी नहीं। अगर राजा बाहर निकलते हैं, तो उन्हें चोंताई को अर्थ-दण्ड चुकाना पडता है। किंवदंती है कि इस पूजा की रात को मंदिर में नर-बलि होती है। इस पूजा के उपलक्ष्य में सबसे पहले जो पशु-बलि होती है, उसे राजबाड़ी के दान के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसी बलि के पशु लेने के लिए चोंताई राजा के पास आया है। पूजा में और बारह दिन बचे हैं।

राजा बोले, "इस बरस से मंदिर में जीव-बलि नहीं होगी।"

सभा के सारे लोग अवाक रह गए। राजा के भाई नक्षत्रराय के सिर के बाल तक खड़े हो गए।

चोंताई रघुपति ने कहा, "क्या मैं यह सपना देख रहा हूँ!"

राजा बोले, "नहीं ठाकुर,हम लोग इतने दिन तक सपना देख रहे थे, आज हमारी चेतना लौटी है। एक बालिका का रूप धारण करके माँ मुझे दिखाई दी थीं। वे कह गई हैं, करुणामयी जननी होने के कारण माँ अपने जीवों का और रक्त नहीं देख सकतीं।"

रघुपति ने कहा, "तब माँ इतने दिन तक जीवों का रक्त-पान कैसे करती आ रही हैं?"

राजा ने कहा, "नहीं, पान नहीं किया। जब तुम लोग रक्तपात करते थे, वे मुँह घुमा लेती थीं।

रघुपति ने कहा, "आप राज-काज अच्छी तरह समझते हैं, संदेह नहीं, किन्तु पूजा के सम्बन्ध में आप कुछ नहीं जानते। अगर देवी को तनिक भी असंतोष होता, तो पहले मुझे ही पता चलता।"

नक्षत्रराय ने बहुत बुद्धिमान के समान गर्दन हिला कर कहा, "हाँ, यह सही बात है। अगर देवी को तनिक भी असंतोष होता, तो पहले पुरोहित जी को पता चलता।"

राजा बोले, "जिनका हृदय कठोर हो गया है, वे देवी की बात नहीं सुन पाते।"

नक्षत्रराय ने पुरोहित के मुँह की ओर देखा - भाव यही था कि इस बात का एक उत्तर देना आवश्यक है। रघुपति ने आग-बबूला होकर कहा, "महाराज, आप पाखंडी नास्तिक के समान बात कह रहे हैं।"

नक्षत्रराय ने धीमी प्रतिध्वनि की भाँति कहा, "हाँ, नास्तिक के समान बात कह रहे हैं।"

गोविन्दमाणिक्य ओजस्वी रूप से पुरोहित के चेहरे की ओर देखते हुए बोले, "ठाकुर, आप राजसभा में बैठ कर झूठमूठ समय नष्ट कर रहे हैं। मंदिर के काम में देर हो रही है, आप मंदिर जाइए। जाते हुए रास्ते में प्रचार कर दीजिए, मेरे राज्य में जो व्यक्ति देवता के सामने जीव-बलि चढ़ाएगा, उसे निर्वासन का दण्ड दिया जाएगा।"

तब रघुपति काँपते-काँपते उठ खड़ा होकर जनेऊ छूकर बोला, "तो, तुम्हारा विध्वंस हो जाए।"

सभासदों ने हाँ-हाँ करते हुए चारों ओर से पुरोहित को घेर लिया। राजा ने संकेत से सभी को रोका, सभी हट कर खड़े हो गए। रघुपति कहने लगा, "तुम राजा हो, तुम चाहो, तो प्रजा का सर्वस्व हरण कर सकते हो, इसी के चलते तुम माँ की बलि का हरण कर लोगे! ठीक है, तुम्हारा क्या सामर्थ्य! देखूँगा, मुझ रघुपति के माँ का सेवक रहते तुम कैसे पूजा में बाधा खड़ी करोगे!"

मंत्री राजा के स्वभाव से बहुत अच्छी तरह अवगत हैं। वे जानते हैं, राजा को संकल्प से जल्दी विचलित नहीं किया जा सकता। उन्होंने डरते हुए धीरे-धीरे कहा, "महाराज, आपके स्वर्गीय पितृ-पुरुष देवी के सामने निरंतर नियमित रूप से बलि देते आए हैं। कभी एक दिन के लिए भी इसमें अन्यथा नहीं घटा।"

मंत्री रुक गए।

राजा चुप रहे। मंत्री ने कहा, "आज इतने दिन बाद आपके पितृ-पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित उसी प्राचीन पूजा में बाधा खड़ी करने से वे लोग स्वर्ग में असंतुष्ट होंगे।"

महाराज सोचने लगे। नक्षत्रराय ने ज्ञान प्रदर्शित करते हुए कहा, "हाँ, वे स्वर्ग में असंतुष्ट होंगे।"

मंत्री फिर बोले, "महाराज, एक काम कीजिए, जहाँ सहस्र बलि दी जाती है, वहाँ एक-सौ बलि का आदेश दीजिए।"

सभासद वज्राहत के समान अवाक हो रहे, गोविन्दमाणिक्य भी बैठ कर सोचने लगे। क्रुद्ध पुरोहित अधीर होकर सभा से उठ कर जाने के लिए तैयार हो गया।

उसी समय पता नहीं कैसे, प्रहरियों की नजर बचा कर नंगे बदन, नंगे पैर एक छोटे बालक ने सभा में प्रवेश किया। राजसभा के बीच खड़े होकर राजा के चेहरे की ओर बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर पूछा, "दीदी कहाँ है?"

विशाल राजसभा में सभी मानो सहसा निरुत्तर हो गए। विशाल भवन में केवल एक बालक की कंठ-ध्वनि प्रतिध्वनि बन कर गूँज उठी, "दीदी कहाँ है?"

राजा तत्क्षण सिंहासन से उतर कर बालक को गोद में उठा कर दृढ स्वर में मंत्री से बोले, "आज से मेरे राज्य में बलि नहीं चढाई जा सकेगी। इसके अलावा और बात मत कहना।"

मंत्री ने कहा, "जो आज्ञा।"

ताता ने राजा से पूछा, "दीदी कहाँ है?"

राजा बोले, "माँ के पास।"

ताता बहुत देर तक मुँह में अँगुली डाले चुप रहा, उसे लगा कि जैसे एक निर्णय पर पहुँच गया है। आज से राजा ने उसे अपने पास रख लिया। चाचा केदारेश्वर को भी राजबाड़ी में जगह मिल गई।

सभासद अपनी-अपनी बातें कहने लगे, "यह अराजक देश बन कर रह गया है। हमारे जानते, बौद्ध अराजक लोग ही रक्तपात नहीं करते, अंत में हम हिंदुओं के देश में भी क्या वही विधान चलेगा!"

नक्षत्रराय ने भी उन लोगों के मत का पूरा समर्थन करते हुए कहा, "हाँ, अंत में हिंदुओं के देश में भी क्या वही विधान चलेगा!"

सभी ने सोचा, इससे अधिक अवनति का लक्षण और क्या हो सकता है! अराजकों और हिंदुओं में क्या अंतर रहा!

चौथा परिच्छेद

भुवनेश्वरी देवी मंदिर का सेवक जयसिंह जाति से राजपूत, क्षत्रिय है। उसके पिता सुचेत सिंह त्रिपुरा राज घराने में पुराने सेवक थे। सुचेत सिंह की मृत्यु के समय जयसिंह एकदम बालक था। इस अनाथ बालक को राजा ने मंदिर के काम में नियुक्त कर दिया। जयसिंह मंदिर के पुरोहित रघुपति द्वारा पाला-पोसा गया और शिक्षित हुआ। बचपन से ही मंदिर में पलने के कारण जयसिंह मंदिर को घर के समान चाहता था, मंदिर की प्रत्येक सीढ़ी, प्रत्येक प्रस्तर-खण्ड के साथ उसका परिचय था। उसकी माँ नहीं थी, भुवनेश्वरी की प्रतिमा को ही वह माँ के रूप में देखता था, प्रतिमा के सामने बैठ कर बातें करता था, अत: उसे अकेलापन अनुभव नहीं होता था। उसके और भी संगी थे। मंदिर के बगीचे में उसने बहुत-से वृक्ष अपने हाथों बड़े किए हैं। प्रतिदिन उसके चतुर्दिक उसके वृक्ष बड़े हो रहे हैं, लताएँ लिपट रही हैं, शाखाएँ पुष्पित हो रही हैं, छाया विस्तार पा रही है, श्यामल वल्लरियों के पल्लव-गुच्छों के कारण निकुंज यौवन के गर्व से परिपूर्ण हो रहा है। किन्तु जयसिंह के मन की इस सारी बात को, प्यार की बात को अधिकतर कोई नहीं जानता था; अपने विपुल बल और साहस के चलते ही वह विख्यात था।

मंदिर का कामकाज निबटा कर जयसिंह अपनी कुटिया के द्वार पर बैठा है। सामने मंदिर का कानन है। संध्या हो रही है। बहुत घने मेघ घिर कर वर्षा हो रही है। नव-वर्षा के जल में जयसिंह के पेड़-पौधे स्नान कर रहे हैं, वर्षा की बूँदों के नृत्य से पत्ते-पत्ते में उत्सव हो रहा है, वर्षा के जल की छोटी-छोटी सैकड़ों-सैकड़ों धाराएँ परस्पर मिल कर, कलकल करते हुए गोमती नदी में जाकर गिर रही हैं - जयसिंह परमानंद में अपने बगीचे की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा है। चारों ओर मेघों का स्निग्ध अंधकार है, वन की छाया है, घने पत्तों की श्यामल शोभा है, मेढकों का कोलाहल है, वर्षा का अविराम झर झर शब्द है - बगीचे में ऐसी नव-वर्षा की घोर घटा को देख कर उसका मन प्रफुल्ल हो रहा है।

भीगते-भीगते रघुपति आ पहुँचा। जयसिंह ने जल्दी से उठ कर पैर धोने के लिए जल और सूखे कपड़े लाकर दिए।

रघुपति ने चिढ़ते हुए कहा, "तुमसे कपड़े लाने को किसने कहा?"

कहते हुए कपड़े लेकर कमरे में फेंक दिए।

जयसिंह पैर धोने का जल लेकर आगे बढ़ा। रघुपति ने चिढ़े स्वर में कहा, "ठहरो ठहरो, अपना यह पानी रख दो।"

कहते हुए पैर से जल का लोटा ठेल कर गिरा दिया।

जयसिंह सहसा ऐसे व्यवहार का कारण न समझ पाने की वजह से अवाक हो गया - कपड़े जमीन से उठा कर यथास्थान रखने को हुआ - रघुपति ने फिर से चिढ़ते हुए कहा, "ठहरो, ठहरो, तुम्हें उन कपड़ों को हाथ लगाने की जरूरत नहीं है।"

कहते हुए स्वयं जाकर कपड़े बदल आया। जल लेकर पैर धो लिए।

जयसिंह ने धीरे-धीरे कहा, "प्रभु, मैंने क्या कोई अपराध किया है?"

रघुपति ने थोड़े उग्र स्वर में कहा, "किसने कहा, तुमने अपराध किया है?"

जयसिंह दुखी होकर चुपचाप बैठा रहा।

रघुपति बेचैन होकर कुटिया के बरामदे में घूमने लगा। इसी तरह बहुत रात हो गई; धीरे-धीरे बारिश पड़ने लगी। अंत में रघुपति ने जयसिंह की पीठ पर हाथ रख कर कोमल स्वर में कहा, "वत्स, सोने जाओ, बहुत रात हो गई है।"

जयसिंह रघुपति के स्नेहिल स्वर से पिघल कर बोला, "पहले प्रभु सोने जाएँ, उसके बाद मैं जाऊँगा।"

रघुपति बोला, "मुझे देर है। देखो पुत्र, आज मैंने तुम्हारे साथ कठोर व्यवहार किया है, कुछ बुरा मत मानना। मेरा मन ठीक नहीं था। विशेष वृत्तांत तुमसे कल सुबह कहूँगा। आज तुम सोने जाओ।"

जयसिंह ने कहा, "जो आज्ञा।"

कह कर सोने चला गया। रघुपति सारी रात घूमता रहा।

सुबह जयसिंह गुरु को प्रणाम करके खड़ा हो गया। रघुपति ने कहा, "जयसिंह, माँ के लिए बलि बंद हो गई है।"

जयसिंह ने विस्मित होकर कहा, "यह क्या बात प्रभु!"

रघुपति - "राजा का ऐसा ही आदेश है।

जयसिंह - कौ-से राजा का?

रघुपति ने चिढते हुए कहा, "यहाँ राजा फिर कितने दर्जन हैं? महाराज गोविन्द माणिक्य ने आदेश दिया है, मंदिर में जीव-बलि नहीं हो सकती।"

जयसिंह - नर बलि?

रघुपति - आह क्या बखेडा है! मैं कह रहा हूँ जीव-बलि, तुम सुन रहे हो नर-बलि।

जयसिंह - कोई जीव-बलि ही नहीं हो सकेगी?

रघुपति - नहीं।

जयसिंह - महाराज गोविन्द माणिक्य ने ऐसा आदेश दिया है?

रघुपति - हाँ रे, एक बात कितनी बार बोलूँ?

जयसिंह ने बहुत देर तक कुछ भी नहीं कहा, केवल अपने मन में बोलता रहा, 'महाराज गोविन्द माणिक्य!' जयसिंह ने बचपन से गोविन्द माणिक्य को देवता के रूप में जाना है। आकाश के पूर्ण चन्द्र के प्रति शिशु की जैसी एक प्रकार की आसक्ति होती है, गोविन्द माणिक्य के प्रति जयसिंह के मन का भाव उसी प्रकार का था। गोविन्द माणिक्य का प्रशांत सुन्दर मुख देख कर जयसिंह प्राण विसर्जित कर सकता था।

रघुपति ने कहा, "इसका कोई तोड़ तो निकालना होगा।"

जयसिंह ने कहा, "अवश्य। मैं महाराज के पास जाता हूँ, उनसे विनती करके कहता हूँ -"

रघुपति - वह चेष्टा व्यर्थ है।

जयसिंह - तब क्या करना होगा?

रघुपति ने कुछ पल सोच कर कहा, "वह कल बताऊँगा। कल प्रभात में तुम कुमार नक्षत्रराय के पास जाकर अनुरोध करना कि मुझसे गुप्त रूप से भेंट करें।"

पाँचवाँ परिच्छेद

प्रात:काल नक्षत्रराय ने आकर रघुपति को प्रणाम करके पूछा, "ठाकुर, क्या आदेश है?"

रघुपति ने कहा, "तुम्हारे लिए माँ का आदेश है। चलो, माँ को प्रणाम करो।"

दोनों मंदिर में गए। जयसिंह भी साथ-साथ गया। नक्षत्रराय ने भुवनेश्वरी की प्रतिमा के सम्मुख साष्टांग प्रणति निवेदन किया।

रघुपति ने नक्षत्रराय से कहा, "कुमार, तुम राजा बनोगे।"

नक्षत्रराय ने कहा, "मैं राजा बनूँगा? पुरोहित जी क्या बोल रहे हैं, उसका कोई मतलब नहीं है।"

कह कर नक्षत्रराय ठठा कर हँसने लगा।

रघुपति ने कहा, "मैं कह रहा हूँ, तुम राजा बनोगे।"

नक्षत्रराय ने कहा, "आप कह रहे हैं, मैं राजा बनूँगा?"

कह कर रघुपति के चेहरे की ओर ताकता रहा।

रघुपति ने कहा, "मैं क्या झूठ बोल रहा हूँ?"

नक्षत्रराय ने कहा, "क्या आप झूठ बोल रहे हैं? वह कैसे होगा? देखिए पुरोहित जी, मैंने कल मेढक का सपना देखा है। अच्छा, जरा बताइए तो, मेढक का सपना देखने से क्या होता है?"

रघुपति ने हँसी दबाते हुए कहा, "बताओ तो, कैसा मेढक था! उसके सिर पर चिह्न तो था?"

नक्षत्रराय ने गर्व के साथ कहा, "उसके सिर पर चिह्न तो था ही। चिह्न न होने से कैसे चलेगा!"

रघुपति ने कहा, "ठीक है। तब तो तुम्हें राज तिलक की प्राप्ति होगी।"

नक्षत्रराय ने कहा, "तब मुझे राज तिलक की प्राप्ति होगी। आप कह रहे हैं, मुझे राज तिलक की प्राप्ति होगी? और अगर न हो?"

रघुपति ने कहा, "मेरा कहा व्यर्थ जाएगा? क्या कह रहे हो?"

नक्षत्रराय ने कहा, "नहीं, नहीं, यह बात नहीं हो रही है। आप कह रहे हैं ना कि मुझे राज तिलक की प्राप्ति होगी, सोचिए अगर न हुई! दैवात ऐसा हो नहीं कि - "

रघुपति ने कहा, "नहीं नहीं, इससे अन्यथा नहीं हो सकता।"

नक्षत्रराय ने कहा - "इससे अन्यथा नहीं हो सकता। आप कह रहे हैं, इससे अन्यथा नहीं हो सकता। देखिए पुरोहित जी, राजा हो जाने पर मैं आपको मंत्री बना दूँगा।"

रघुपति - "मंत्री-पद को मैं ठोकर मारता हूँ।"

नक्षत्रराय ने बड़े उदार भाव से कहा, "अच्छा, जयसिंह को मंत्री बना दूँगा।"

रघुपति ने कहा, "वह बात बाद में होगी। राजा बनने के पूर्व क्या करना होगा, पहले वह सुनो। माँ राज-रक्त देखना चाहती हैं, सपने में मुझे यही आदेश हुआ है।"

नक्षत्रराय ने कहा, "माँ राज-रक्त देखना चाहती हैं, सपने में आपको यही आदेश हुआ है। यह तो सही बात है।"

रघुपति ने कहा, "तुम्हें गोविन्द माणिक्य का रक्त लाना होगा।"

नक्षत्रराय थोड़ी देर तक मुँह फाड़े रहा। यह बात उतनी सही नहीं लगी।

रघुपति ने तीव्र स्वर में कहा, "सहसा भ्रातृ-स्नेह जाग उठा है क्या?"

नक्षत्रराय ने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा, "हा हा, भ्रातृ-स्नेह! जो हो, पुरोहित जी ने ठीक ही कहा, भ्रातृ-स्नेह!"

ऐसी आनंद की बात, ऐसी हास्यकर बात मानो और नहीं हो सकती। भ्रातृ-स्नेह! कैसा लज्जा का विषय है! किन्तु अंतर्यामी जानते हैं, नक्षत्रराय के मन के भीतर भ्रातृ-स्नेह जाग रहा है, उसे हँसी में उड़ा देना आसान नहीं है।

रघुपति ने कहा, "तो क्या करोगे, बोलो।"

नक्षत्रराय ने कहा, "बोलिए, क्या करूँ?"

रघुपति - "ध्यानपूर्वक बात सुनो। तुम्हें माँ के दर्शन के लिए गोविन्द माणिक्य का रक्त लाना होगा।"

नक्षत्रराय ने मन्त्र के समान दोहराया, "माँ के दर्शन के लिए गोविन्द माणिक्य का रक्त लाना होगा।"

रघुपति नितांत घृणा के साथ बोल उठा, "ना, तुमसे कुछ नहीं होगा।"

नक्षत्रराय ने कहा, "क्यों नहीं होगा? जो बोला है, वही होगा। आप तो आदेश दे रहे हैं?"

रघुपति - "हाँ, मैं आदेश दे रहा हूँ।"

नक्षत्रराय - "क्या आदेश दे रहे हैं?"

रघुपति ने झुँझलाते हुए कहा, " माँ की इच्छा है, वे राज रक्त का दर्शन करेंगी। तुम गोविन्द माणिक्य का रक्त दिखा कर उनकी इच्छा पूर्ण करोगे, यही मेरा आदेश है।"

नक्षत्रराय - "मैं आज ही जाकर फतह खाँ को इस काम में लगा दूँगा।

रघुपति - "नहीं नहीं, और किसी आदमी को इस बारे में कुछ भी नहीं बताना। केवल जयसिंह को तुम्हारी सहायता के लिए नियुक्त करूँगा। कल प्रात:काल आओ, किस उपाय से इस काम को अंजाम देना है, कल बताऊँगा।"

नक्षत्रराय ने रघुपति से पीछा छुडा कर राहत की साँस ली। जितना शीघ्र हो सका, बाहर निकल आया।

छठा परिच्छेद

नक्षत्रराय के चले जाने पर जयसिंह ने कहा, "गुरुदेव, ऐसी भयानक बात कभी नहीं सुनी। आपने माँ के सम्मुख माँ का नाम लेकर भाई के हाथों भाई की हत्या का प्रस्ताव कर दिया, और मुझे खड़े होकर वही सुनना पड़ा।"

रघुपति ने कहा, "बताओ, और क्या उपाय है।"

जयसिंह बोला, "उपाय! किसका उपाय!"

रघुपति - "देख रहा हूँ, तुम भी नक्षत्रराय की तरह हो गए हो। तो, अब तक सुना क्या?"

जयसिंह - "जो सुना है, वह सुनने योग्य नहीं है, उसे सुनना पाप है।"

रघुपति - "पाप-पुण्य तुम क्या समझते हो? "

जयसिंह - "इतने दिन आपसे शिक्षा प्राप्त की है, क्या पाप-पुण्य कुछ भी नहीं समझता?"

रघुपति - "सुनो वत्स, तब तुम्हें एक और शिक्षा देता हूँ। पाप-पुण्य कुछ नहीं होता। पिता कौन है, भाई कौन है, कोई ही कौन है? अगर हत्या पाप है, तो सारी हत्याएँ ही एक जैसी हैं। लेकिन कौन कहता है, हत्या पाप है? हत्याएँ तो हर रोज ही हो रही हैं। कोई सिर पर पत्थर का एक टुकड़ा गिर जाने से मर रहा है, कोई बाढ़ में बह जाने से मर रहा है, कोई महामारी के मुँह में समा कर मर रहा है, और कोई आदमी के छुरा मार देने से मर रहा है। हम लोग रोजाना कितनी चींटियों को पैरों तले कुचलते हुए चले जा रहे हैं, हम क्या उनसे इतने ही महान हैं? यह सब क्षुद्र प्राणियों के जीवन-मृत्यु का खेल खंडन योग्य तो नहीं है, महाशक्ति की माया खंडन योग्य तो नहीं है। कालरूपिणी महामाया के सम्मुख प्रतिदिन कितने लाखों-करोड़ों प्राणियों का बलिदान हो रहा है - संसार में चारों ओर से जीवों के शोणित की धाराएँ उनके महा-खप्पर में आकर जमा हो रही हैं। शायद मैंने उन धाराओं में और एक बूँद मिला दी। वे अपनी बलि कभी-न-कभी ग्रहण कर ही लेतीं, मैं बस इसमें एक कारण भर बन गया।"

तब जयसिंह प्रतिमा की ओर घूम कर कहने लगा, "माँ, क्या तुझे सब इसीलिए माँ पुकारते हैं! तू ऐसी पाषाणी है! राक्षसी, सारे संसार का रक्त चूस कर पेट भरने के लिए ही तूने यह लाल जिह्वा बाहर निकाल रखी है। स्नेह, प्रेम, ममता, सौंदर्य, धर्म,

सभी मिथ्या है, सत्य है, केवल तेरी यह रक्त-पिपासा। तेरा ही पेट भरने के लिए मनुष्य मनुष्य के गले पर छुरी रखेगा, भाई भाई का खून करेगा, पिता-पुत्र में मारकाट मचेगी! निष्ठुर, अगर सचमुच ही यह तेरी इच्छा है, तो बादल रक्त की वर्षा क्यों नहीं करते, करुणा स्वरूपिणी सरिता रक्त की धारा बहाते हुए रक्त-समुद्र में जाकर क्यों नहीं मिलती? नहीं, नहीं, माँ, तू स्पष्ट रूप से बता - यह शिक्षा मिथ्या है, यह शास्त्र मिथ्या है - मेरी माँ को माँ नहीं कहते, संतान-रक्त-पिपासु राक्षसी कहते हैं, मैं इस बात को सहन नहीं कर सकता।"

जयसिंह की आँखों से आँसू झरने लगे - वह अपनी बातों पर स्वयं ही सोचने लगा। इसके पूर्व कभी इतनी बातें उसके मन में नहीं आईं, यदि रघुपति उसे नवीन शास्त्र की शिक्षा नहीं देता रहता, तो कभी भी उसके मन में इतनी बातें नहीं आतीं।

रघुपति ने थोड़ा हँसते हुए कहा, "तब तो बलिदान की परम्परा पूरी तरह उठा देनी होगी।।"

जयसिंह शैशव-काल से ही प्रतिदिन बलि देखता आ रहा है। इसी कारण, कभी मंदिर में बलि बंद हो सकती है अथवा होनी उचित है, यह बात किसी भी तरह उसके मन में नहीं समाती। यहाँ तक कि, इस बात को सोचने भर से उसके मन को आघात लगता है। इसीलिए रघुपति की बात के उत्तर में जयसिंह ने कहा, "वह बात अलग है। उसका कोई दूसरा अर्थ है। उसमें कोई पाप नहीं है। किन्तु उसी कारण भाई भाई की हत्या करेगा! उसी कारण महाराज गोविन्द माणिक्य को - प्रभु, आपके चरण पकड़ कर पूछता हूँ, मुझे बहकाइए मत, क्या माँ ने सचमुच ही सपने में कहा है - राज-रक्त के बिना उनकी तृप्ति नहीं होगी?"

रघुपति ने कुछ देर चुप रह कर कहा, "सचमुच नहीं, तो क्या झूठ कहा है? तुम क्या मुझ पर अविश्वास करते हो?"

जयसिंह ने रघुपति की चरण-धूलि लेकर कहा, "गुरुदेव के प्रति मेरा विश्वास शिथिल न पड़े। किन्तु नक्षत्रराय का जन्म भी तो राजकुल में हुआ है।"

रघुपति ने कहा, "देवताओं का स्वप्न इंगित मात्र होता है, सारी बात सुनी नहीं जा सकती, बहुत कुछ समझ लेना पडता है। साफ ही समझ में आ रहा है, देवी गोविन्द माणिक्य से असंतुष्ट हो गई हैं, असंतोष का पूरा कारण भी पैदा हो गया है। अतएव जब देवी ने राज-रक्त की इच्छा की है, तो समझ लेना होगा कि वह गोविन्द माणिक्य का ही रक्त है।"

जयसिंह ने कहा, "अगर यह सच है, तो राज-रक्त मैं ही लाऊँगा - नक्षत्रराय को पाप में लिप्त नहीं होने दूँगा।"

रघुपति ने कहा, "देवी के आदेश-पालन में कोई पाप नहीं है।"

जयसिंह - "पुण्य तो है, प्रभु। वह पुण्य मैं ही कमाऊँगा।"

रघुपति ने कहा, "तो वत्स, सच-सच कहता हूँ। मैं तुम्हारा बचपन से ही पुत्र से अधिक सार-सँभाल के साथ, प्राणों से अधिक प्यार करते हुए पालन-पोषण करता आया हूँ, मैं तुम्हें खो नहीं सकूँगा। अगर नक्षत्रराय गोविन्द माणिक्य का वध करके राजा बन जाता है, तो कोई उसे एक बात भी नहीं कहेगा, लेकिन तुम यदि राजा पर हाथ उठाते हो, तो मैं तुम्हें वापस नहीं पा सकूँगा।"

जयसिंह ने कहा, "मेरे स्नेह में - पिता, मैं अपदार्थ - मेरे स्नेह में आप एक चींटी को भी नुकसान नहीं पहुँचा पाएँगे। अगर आप मेरे स्नेह में पाप में लिप्त हो जाएँ, तो मैं उस स्नेह को अधिक दिन नहीं भोग पाऊँगा, उस स्नेह का परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होगा।"

रघुपति ने कहा, "अच्छा, अच्छा, वह बात बाद में होगी। कल नक्षत्रराय के आने पर जो भी हो, एक व्यवस्था हो जाएगी।"

जयसिंह ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की, "राज-रक्त मैं ही लाऊँगा। माँ के नाम पर, गुरुदेव के नाम पर भ्रातृ-हत्या नहीं होने दूँगा।"

सातवाँ परिच्छेद

जयसिंह को पूरी रात नींद नहीं आई। जिस विषय पर गुरु के साथ चर्चा हुई थी, देखते-देखते उसकी शाखा-प्रशाखाएँ निकालने लगीं। अधिकांश समय आरम्भ हमारे अधिकार में होता है, अंत नहीं। चिन्ता के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। जयसिंह के मन में अबाध वेग से ऐसी बातें उठने लगीं, जिन्होंने उसके आशैशव विश्वास के मूल पर निरंतर आघात करना प्रारम्भ कर दिया। जयसिंह पीड़ित और दुखी होने लगा।

किन्तु दु:स्वप्न की भाँति चिन्ता किसी भी तरह शांत नहीं होना चाहती। जयसिंह जिस देवी को इतने दिन तक माँ के रूप में जानता था, आज गुरुदेव ने उसके मातृत्व का हरण क्यों कर लिया, क्यों उसे हृदयहीन शक्ति के रूप में व्याख्यायित कर

दिया। शक्ति का संतोष ही क्या और असंतोष ही क्या! शक्ति की आँखें कहाँ हैं अथवा कान ही कहाँ हैं! शक्ति तो महारथ के समान अपने सहस्र चक्रों के तले जगत को जोत कर घर्घर ध्वनि करती चली जा रही है, उसके सहारे कौन चल सका है, उसके नीचे दब कर कौन पिसा है, उसके ऊपर चढ़ कर कौन उत्सव मना रहा है, उसके नीचे आकर कौन आर्तनाद कर रहा है, वह इस विषय में क्या जान पाएगा! क्या उसका कोई सारथी नहीं है? क्या यही मेरा व्रत है कि पृथ्वी के निरीह असहाय भीरु जीवों का रक्त निकाल कर कालरूपिणी निष्ठुर शक्ति की प्यास बुझानी होगी! क्यों? वह तो अपना काम स्वयं ही कर रही है - उसके पास दुर्भिक्ष है, बाढ़ है, भूकंप है, बुढापा, महामारी, अग्निदाह है, निर्दय मानव-हृदय में स्थित हिंसा है - उसे मुझ क्षुद्र की क्या आवश्यकता!

उसके अगले दिन जो प्रभात हुआ, वह अति मनोहर प्रभात था। वर्षा थम गई है। पूर्व दिशा में बादल नहीं हैं। सूर्य-रश्मियाँ मानो वर्षा के जल में धुली हुई और कोमल हैं। वर्षा की बूँदों और सूर्य की किरणों में दशों दिशाएँ झलमल कर रही हैं। शुभ्र आनंद-प्रभा आकाश में, मैदान में, वन में, नदी के प्रवाह में प्रफुल्ल श्वेत शतदल की भाँति प्रस्फुटित हो उठी है। नील गगन में चीलें तैर रही हैं - इन्द्रधनुष के तोरण के नीचे से बगुलों की पंक्ति उड़ी चली जा रही है। पेड़-पेड़ पर गिलहरियाँ एक-दूसरे के पीछे दौड़ रही हैं। एक-दो अति भीरु खरगोश चौंक कर झुरमुट से बाहर निकालने के बाद फिर से आड़ खोज रहे हैं। मेमने अति दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ कर घास चर रहे हैं। गायें आज मन के आनंद में मैदान में भर गई हैं। चरवाहे गा रहे हैं। बगल में कलश थामी माओं का पल्लू पकड़े बालक-बालिकाएँ आज बाहर निकल आए हैं। वृद्ध पूजा के लिए पुष्प चुन रहे हैं। आज नदी में स्नान के लिए अनेक लोग एकत्र हो गए हैं, वे मधुर स्वर में बातें कर रहे हैं - नदी की कलकल ध्वनि भी लगातार हो रही है। आषाढ़ के प्रभात में इस जीवमयी, आनंदमयी धरा की ओर देख कर जयसिंह ने दीर्घ निश्वास छोडते हुए मंदिर में प्रवेश किया।

जयसिंह प्रतिमा की ओर देखते हुए हाथ जोड़ कर बोला, "क्यों माँ, आज ऐसी अप्रसन्न क्यों हो? एक दिन अपने जीवों का रक्त न देख पाने के कारण तुम्हारी भृकुटी??? इतनी चढ़ गई है! हम लोगों के हृदय में झाँक कर देखो, क्या भक्ति का कोई अभाव देख पा रही हो? क्या भक्तों का हृदय पा लेने से तुम्हारी तृप्ति नहीं होती, निरपराधों के शोणित की इच्छा है? अच्छा माँ, सच बताओ, क्या पुण्य-देह गोविन्द माणिक्य को पृथिवी से हटा कर यहाँ दानव-राज्य की स्थापना करना ही

तुम्हारा उद्देश्य है? क्या तुम्हें राज-रक्त चाहिए ही? तुम्हारे मुँह से उत्तर सुने बिना मैं कभी भी राज-हत्या नहीं होने दूँगा, मैं बाधा खड़ी करूँगा। बोलो, हाँ या नहीं!"

निर्जन मंदिर में सहसा ध्वनि गूँजी, "हाँ।"

जयसिंह ने चौंकने के बाद ध्यान से देखा, किसी को भी नहीं देख पाया, महसूस हुआ, जैसे छाया के समान कुछ काँप गया। आवाज सुन कर पहले उसे लगा, मानो उसके गुरु का कंठ-स्वर है। बाद में सोचा, संभव है, माँ ने उसके गुरु के कंठ-स्वर में आदेश दिया हो! उसका शरीर रोमांचित हो उठा। वह भूमिष्ठ होकर प्रतिमा को प्रणाम करके शस्त्र लेकर बाहर निकल आया।

आठवाँ परिच्छेद

गोमती नदी का दक्षिणी किनारा एक स्थान पर बहुत ऊँचा है। बारिश की धारा और छोटे-छोटे सोतों ने इस ऊँची भूमि को नाना गुहा-गह्वरों में बाँट दिया है। इसके कुछ दूर बडे-बड़े शाल और गाम्भारी[1] वृक्षों ने लगभग अर्ध चंद्राकार रूप में इस भूमि-खण्ड को घेर रखा है, किन्तु इस थोड़ी-सी भूमि पर बीच में एक भी विशाल वृक्ष नहीं है। डूहों पर जगह-जगह छोटे-छोटे शाल के पेड़ बढ़ नहीं पा रहे हैं, टेढ़े मेढे होकर काले पड़ गए हैं। बहुत सारे पत्थर फैले पड़े हैं। एक हाथ दो हाथ चौड़े सैकड़ों छोटे-छोटे सोते टेढ़े मेढे रास्तों से घूमते-घूमते, आपस में मिलते, अलग होते जाकर नदी में समा रहे हैं। यह स्थान अति निर्जन है - यहाँ का आकाश पेड़ों से ढका हुआ नहीं है। यहाँ से गोमती नदी और उसके दूसरे किनारे वाले विलक्षण रंग की फसलों से भरे खेत बहुत दूर तक देखे जा सकते हैं। राजा गोविंदमाणिक्य यहाँ प्रति दिन सुबह घूमने आते हैं, साथ में न कोई मंत्री आता है, न अनुचर। गोमती में मछली पकडने आने वाले मछुआरे कभी-कभी दूर से देखते थे, उनके सौम्य-मूर्ति राजा योगी के समान स्थिर-भाव से आँखें मूँदे बैठे हैं, उनके चेहरे पर प्रभात की ज्योति है अथवा उनके आत्मा की ज्योति, समझ में नहीं आता था। आजकल बारिश के दिनों में रोजाना यहाँ नहीं आ पाते, लेकिन बारिश थमने पर जिस दिन आते हैं, उस दिन छोटे ताता को साथ ले आते हैं।

ताता को और ताता कहने का मन नहीं करता। एकमात्र जिसके मुँह से ताता संबोधन जँचता था, वह तो रही नहीं। पाठकों के लिए ताता शब्द का कोई अर्थ ही नहीं है। किन्तु शाल-वन में सुबह-सुबह जब हासि शैतानी करते हुए शाल के वृक्ष की आड़ में छिप कर अपने सुमधुर तीव्र स्वर में ताता पुकारती थी और उसके उत्तर में पेड़-पेड़

पर दोएल [2] पुकारने लगती थीं, दूर जंगल से प्रतिध्वनि लौट आती थी, तब वही ताता शब्द अर्थ से परिपूर्ण होकर जंगल में व्याप जाता था - तब वही ताता संबोधन एक बालिका के छोटे-से हृदय के अति कोमल स्नेह-नीड़ को छोड़ कर पक्षी के समान स्वर्ग की ओर उड़ जाता था - तब वही एक स्नेहसिक्त मधुर संबोधन प्रभात के समस्त पक्षियों के गान को लूट लेता था - प्रभात की प्रकृति के आनंदमय सौंदर्य के साथ एक छोटी-सी बालिका के आनंदमय हृदय का ऐक्य दर्शाता था। अब वह बालिका नहीं है - बालक है, लेकिन ताता नहीं है। यह बालक संसार के हजारों लोगों के लिए है, हजारों विषयों के लिए है, किन्तु ताता केवलमात्र उस बालिका के लिए ही है। महाराजगोविन्द माणिक्य इस बालक को ध्रुव बुलाते हैं, हम लोग भी वही कह कर पुकारेंगे।

महाराज पहले अकेले गोमती के तट पर आते थे, अब ध्रुव को साथ ले आते हैं। वे उसकी पवित्र सरल मुख-छवि में देवलोक की छटा देख पाते हैं। जब राजा मध्याह्न में संसार के भँवर में प्रवेश करते हैं, तो वृद्ध विज्ञ मंत्री उन्हें घेर कर खड़े हो जाते हैं, उन्हें परामर्श देते हैं। और प्रभात होने पर एक बालक उन्हें संसार के बाहर ले आता है - उसकी दो बड़ी-बड़ी आँखों के सम्मुख विषय की हजारों कुटिलाताएँ कुण्ठित पड़ जाती हैं - बालक का हाथ थाम कर महाराज विश्व-जगत के मध्य अनंत की ओर फैले एक उदार सरल विस्तृत राजपथ पर जाकर खड़े हो जाते हैं; वहाँ अनंत सुनील आकाश के चँदोवे के नीचे विद्यमान विश्व-ब्रह्माण्ड की महासभा दिखाई पडती है; वहाँ भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, सप्तलोक का अस्पष्ट संगीत सुनाई पडता है; वहाँ सरल मार्ग पर सभी कुछ सरल सहज शोभन अनुभव होता है, कवल आगे बढ़ने का उत्साह रहता है, विकट व्याकुलता-चिन्ता, व्याधि-अशांति दूर हो जाती है। महाराज को उसी प्रभात में निर्जन वन में, नदी-तट पर, मुक्त आकाश के नीचे, एक बालक के प्रेम में निमग्न होकर असीम प्रेम-समुद्र का मार्ग दिखाई पडने लगता है।

गोविन्दमाणिक्य ध्रुव को गोदी में बैठाए ध्रुवोपाख्यान सुना रहे हैं; वह कोई बहुत कुछ समझ पा रहा है, ऐसा नहीं है, लेकिन राजा की इच्छा है कि वे आधे-अधूरे स्वर में ध्रुव के मुँह से उसी ध्रुवोपाख्यान को पुन: सुनें।

कथा सुन कर ध्रुव बोला, "मैं जंगल में जाऊँगा।"

राजा बोले, "जंगल में क्या करने जाएगा?"

ध्रुव बोला, "हयि[3] को देखने जाऊँगा।"

राजा बोले, "हम लोग तो जंगल में आए हैं, हरि को देखने ही आए हैं।"

ध्रुव - हयि कहाँ हैं?

राजा- यहीं हैं।

ध्रुव ने कहा, "दीदी कहाँ है?

कहते हुए उठ खड़ा होकर पीछे ताक कर देखा - उसे लगा, मानो दीदी पहले की तरह पीछे से अचानक उसकी आँखें बंद करने आ रही है। किसी को भी न पाकर गर्दन झुकाए आँखें उठा कर पूछा, "दीदी कहाँ है?"

राजा बोले, "हरि ने तुम्हारी दीदी को बुला लिया है।"

ध्रुव ने कहा, "हयि कहाँ है?"

राजा ने कहा, "उन्हें पुकारो बेटा। तुम्हें वही जो श्लोक सिखाया था, उसी का पाठ करो।"

ध्रुव हिल हिल कर बोलने लगा -

हरि तुम्हें पुकारता - बालक एकाकी,

अँधेरे अरण्य में दौड़ रहा रे।

घने तिमिर में नयन-नीर में

पथ खोजे नहीं मिल रहा रे।

लगता सदा क्या करूँ क्या करूँ,

आएगी कब काल-विभावरी,

उसी भय में डूब पुकारता 'हरि हरि' -

हरि बिन कोई नहीं रे।

नयन-नीर नहीं होगा विफल,

कहते सब तुम्हें भक्तवत्सल,

समझ रहा उसी आशा को संबल -

उसी आशा में जीवित हूँ रे।

जागते अँधियारे में तुम्हारे चक्षु-तारे,

होते नहीं भक्त तुम्हारे कभी दिशाहारा,

ध्रुव तुम्हें देखता, तुम हो ध्रुव तारा -

और किसकी ओर देखूँ रे।

'र' को, 'ल' को, 'ड' को, 'द' को उल्टा-पुल्टा करके, आधी बातें मुँह में रोक कर, आधी बातों का उच्चारण करके, डोल-डोल कर सुधामय कंठ से ध्रुव ने इस श्लोक का पाठ कर दिया। सुन कर राजा का हृदय आनंद में निमग्न हो गया, प्रभात दुगुना मधुर हो उठा, चतुर्दिक नदी कानन तरु लता हँसने लगे। उन्हें कनक-सुधा-सिक्त नील गगन में किसकी अनुपम सुन्दर सहास मुख-छवि दिखाई पड़ी! जैसे ध्रुव उनकी गोद में बैठा है - उसी प्रकार किसी ने उन्हें भी बाहुपाश में गोद में खींच लिया है। वे अपने को, अपने चतुर्दिक के सभी को, विश्व-चराचर को किसी की गोद में देखने लगे। उनके आनंद और प्रेम ने सूर्य की किरणों के समान दशों दिशाओं में विकीर्ण होकर आकाश को भर दिया।

ऐसे समय अचानक सशत्र जयसिंह गुहा मार्ग से राजा के सम्मुख आ पहुँचा।

राजा ने उसकी ओर दोनों हाथ बढ़ा दिए; कहा, "आओ जयसिंह, आओ।"

उस समय राजा बालक के साथ बालक बन गए थे, उनकी राज-मर्यादा कहाँ थी?

जयसिंह ने राजा को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। तब कहा, "महाराज, एक निवेदन है।"

राजा ने कहा, "क्या है, बोलो।"

जयसिंह - "माँ आपसे अप्रसन्न हो गई हैं।"

राजा - "क्यों, मैंने उन्हें असंतुष्ट करने वाला कौन-सा काम किया है? "

जयसिंह - "बलि बंद करके महाराज ने देवी की पूजा में बाधा खड़ी की है।"

राजा बोले, "क्यों जयसिंह, हिंसा की यह लालसा क्यों! तुम माँ की गोद में संतान का रक्त बहा कर माँ को प्रसन्न करना चाहते हो? "

जयसिंह धीरे-धीरे राजा के पैरों के निकट बैठ गया। ध्रुव उसकी तलवार लेकर खेलने लगा।

जयसिंह ने कहा, "क्यों महाराज, शास्त्र में तो बलि-दान की व्यवस्था है।"

राजा ने कहा, "शास्त्र के सच्चे विधान का कौन पालन करता है। सभी अपने स्वभाव के वशीभूत शास्त्र की व्याख्या करते रहते हैं। जिस समय सभी लोग देवी के सामने बलि के कीचड भरे रक्त को सर्वांग पर लपेट कर उत्कट चीत्कार करते हुए भीषण उल्लास के साथ प्रांगण में नाचते रहते हैं, क्या वे उस समय माँ की पूजा करते हैं अथवा उनके हृदय में हिंसा की जो राक्षसी है, उस राक्षसी की पूजा करते हैं! हिंसा के सम्मुख बलि चढाना शास्त्र का विधान नहीं है, बल्कि हिंसा की ही बलि चढाना शास्त्र का विधान है।"

जयसिंह बहुत देर तक चुपचाप रहा। कल रात से उसके मन भी ऐसी ही अनेक बातें हलचल मचा रही थीं।

अंत में बोला, "मैंने माँ के अपने मुँह से सुना है - इस विषय में और कोई संशय नहीं हो सकता। उन्होंने स्वयं कहा है, वे महाराज का रक्त चाहती हैं।"

कह कर सुबह की मंदिर वाली घटना राजा को सुनाई।

राजा हँस कर बोले, "यह माँ का आदेश नहीं है, यह रघुपति का आदेश है। रघुपति ने ही ओट से तुम्हारी बात का उत्तर दिया था।"

राजा के मुँह से यह बात सुन कर जयसिंह एकदम से चौंक उठा। इसी तरह का संशय एक बार उसके मन में भी आश्चर्य के रूप में उठा था, किन्तु फिर विद्युत के समान अन्तर्हित हो गया था। उसी संदेह पर राजा की बात से फिर आघात लगा।

जयसिंह अत्यंत कातर होकर बोल उठा, "नहीं महाराज, मुझे एक के बाद एक संशय से संशयांतर में मत ले जाइए - मुझे किनारे से ठेल कर समुद्र में मत गिराइए - आपकी बातों से मेरे चारों ओर का अंधकार केवल गहराता जा रहा है। मेरा जो

विश्वास था, जो भक्ति थी, वही रहे - उसके बदले यह कुहासा मुझे नहीं चाहिए। आदेश माँ का हो अथवा गुरु का, वह एक ही बात है - मैं पालन करूँगा।" कहते हुए तेजी से उठ कर अपनी तलवार निकाल ली - सूर्य की किरणों में तलवार विद्युत के समान चकमक करने लगी। यह देख कर ध्रुव चीख कर रोने लगा, अपने छोटे-छोटे दोनों हाथों से राजा को लपेट कर उन्हें प्राणपण से ढक लिया - राजा ने जयसिंह की ओर ध्यान न देकर ध्रुव को छाती से चिपका लिया।

जयसिंह ने तलवार दूर फेंक दी। ध्रुव की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोला, "कोई भय नहीं वत्स, कोई भय नहीं। मैं यह चला, तुम इसी महान आश्रय में रहो, इसी विशाल वक्ष में शोभा पाओ - तुम्हें कोई अलग नहीं करेगा।"

कहते हुए राजा को प्रणाम करके प्रस्थान को तैयार हो गया।

सहसा फिर से क्या सोच कर लौट कर बोला, "महाराज सावधान कर रहा हूँ, आपके भाई नक्षत्रराय ने आपके विनाश की मंत्रणा की है। उनतीसवीं आषाढ़ चतुर्दशी को देव-पूजा की रात आप सावधान रहिए।"

राजा ने हँस कर कहा, "नक्षत्र किसी भी तरह मेरा वध नहीं कर पाएगा, वह मुझे प्यार करता है।"

जयसिंह विदा हो गया।

राजा ने ध्रुव की ओर भक्ति-भाव से देखते हुए कहा, "आज तुम्हीं ने धरती की रक्तपात से रक्षा की है, इसी उद्देश्य के लिए तुम्हारी दीदी तुम्हें छोड़ गई है।"

कह कर ध्रुव के आँसुओं से भीगे दोनों कपोल पोंछ दिए।

ध्रुव ने गंभीर मुँह बना कर पूछा, "दीदी कहाँ है?"

उसी समय बादलों ने आकर सूर्य को ढक लिया, नदी पर काली छाया फैल गई। दूर जंगल का किनारा भी मेघों के समान काला हो उठा। बारिश के आसार देख कर राजा महल लौट आए।

1- गाम्भारी : विभिन्न समान बनाने में काम आने वाले वृक्ष, जैसे- शीशम-सागौन आदि ।

2- गोएल : गाने वाली छोटी चिड़िया, रोबिन ।

3- हयि : हरि

नौवाँ परिच्छेद

मंदिर बहुत दूर नहीं है। लेकिन जयसिंह निर्जन नदी के किनारे से होते हुए बहुत घूम कर धीरे-धीरे मंदिर की ओर चला। उसके मन में भारी चिन्ता उठने लगी। एक जगह नदी के किनारे पेड़ के नीचे बैठ गया। दोनों हाथों से चेहरा ढक कर सोचने लगा, 'एक काम निबटा दिया, लेकिन संशय नहीं मिट रहा है। आज से मेरा संशय कौन दूर करेगा! क्या अच्छा है, क्या बुरा , आज से कौन मुझे समझाएगा! संसार के हजारों-करोड़ों रास्तों के मुहाने पर खड़ा, किससे पूछूँ कौन-सा सत्य मार्ग है! वृक्षहीन दूर पथ पर मैं एकाकी अंधा खड़ा हूँ, आज मेरी लाठी टूट गई।'

जयसिंह जब उठा, तो वर्षा आरम्भ हो गई। भीगते-भीगते मंदिर की ओर चल पड़ा। देखा, दल बाँधे बहुत सारे लोग कोलाहल मचाते हुए मंदिर की ओर से चले आ रहे हैं।

बूढ़ा बोल रहा है, "पता है, बाप-दादा के जमाने से यही चला आ रहा है, आज राजा की बुद्धि ने क्या उन सबको ही पीछे छोड़ दिया!"

युवा कह रहा है, "अब मंदिर में आने का और मन नहीं करता, पूजा की वह धूम ही नहीं है।"

कोई बोला, "यह जैसे नवाबों की राजशाही बन कर खड़ी हो गई है।"

उसके मन का भाव यही है कि बलि के सम्बन्ध में दुविधा एक मुसलमान के मन में ही पैदा हो सकती है, एक हिन्दू के मन में पैदा होना आश्चर्य की बात है।

स्त्रियाँ बोलने लगीं, "इस राज्य का भला नहीं होगा।"

एक बोली, "पुरोहित ठाकुर[1] ने खुद कहा है, माँ ने बोला है कि यह देश तीन महीने में महामारी में बरबाद हो जाएगा।"

हारू बोली, "यही देखो-ना, मोधो आज डेढ़ बरस से बीमारी भोग कर भी लगातार जीता आ रहा था, जैसे ही बलि बंद हुई, वैसे ही मर गया।"

क्षान्त बोली, "वह क्यों, मेरे जेठ का लडका, किसे पता था, मर जाएगा! तीन दिन ज्वर। जैसे ही कविराज की गोली खाई, वैसे ही आँखें पलट गईं।"

जेठ के लडके के शोक में और राज्य के अमंगल की आशंका में क्षान्त दुखी हो गई।

तिनकौड़ी बोला, "उस दिन मथुरहाट की मंडी में आग लग गई, एक छप्पर तक नहीं बचा।"

चिंतामणि किसान ने अपने एक साथी किसान से कहा, "इतनी बातों का क्या काम, देखते क्यों नहीं, इस बरस धान जैसे सस्ता हो गया है, वैसे और किसी बरस नहीं हुआ। कौन जाने, इस बरस किसानों के भाग्य में क्या है!"

बलि बंद होने के बाद और पहले भी जिसका जो कुछ नुकसान हुआ, सर्व सम्मति से बलि बंद होना ही उसका एकमात्र कारण निर्धारित हुआ। इस देश को छोड़ कर चले जाना ही अच्छा है, सभी की ऐसी राय बन गई। यह राय जरा-सी भी बदली तो नहीं, लेकिन रहते सभी देश में ही रहे।

जयसिंह अनमना था। इन लोगों की ओर तनिक भी ध्यान न देकर वह मंदिर में जा पहुँचा; देखा, रघुपति पूजा निबटा कर मंदिर के बाहर बैठा है।

जयसिंह ने तेजी से रघुपति के निकट जाकर कातर, परन्तु दृढ स्वर में पूछा, "गुरुदेव, आज प्रभात में जब मैंने माँ का आदेश ग्रहण करने के लिए माँ से प्रश्न किया था, तब आपने क्यों उसका उत्तर दिया?"

रघुपति थोड़ा इधर-उधर करते हुए बोला, "माँ तो मेरे द्वारा ही अपने आदेश का प्रचार करती हैं, वे अपने मुँह से कुछ नहीं कहतीं।"

जयसिंह ने कहा, "आप सम्मुख आकर क्यों नहीं बोले? ओट में छिपे रह कर मुझसे छल क्यों किया?"

रघुपति ने क्रुद्ध होकर कहा, "चुप करो। मैं क्या सोच कर क्या करता हूँ, तुम क्या समझोगे? बाचाल की तरह जो मुँह में आए, वही मत बको। मैं जो आदेश दूँ, तुम केवल उसी का पालन करो, कोई सवाल मत करो।"

जयसिंह चुप रहा। उसका संशय कम होने के बजाय बढ़ गया। कुछ देर बाद बोला, "आज प्रात: मैंने माँ के सम्मुख कहा था, अगर उन्होंने अपने मुँह से आदेश नहीं दिया, तो मैं कभी भी राज-हत्या नहीं होने दूँगा, उसमें विघ्न डालूँगा। जब पक्का समझ में आ गया कि माँ ने आदेश नहीं दिया है, तो महाराज से नक्षत्रराय के संकल्प को प्रकट कर देना पड़ा, उन्हें सतर्क कर दिया है।"

रघुपति कुछ देर तक चुप बैठा रहा। उद्वेलित क्रोध का दमन करके दृढ स्वर में बोला, "मंदिर में आओ।"

दोनों मंदिर में आ गए।

रघुपति ने कहा, "माँ के चरण स्पर्श करके शपथ लो - बोलो, उनतीसवें आषाढ़ तक मैं राज-रक्त लाकर इन चरणों में अर्पित करूँगा।"

जयसिंह कुछ देर गर्दन झुकाए मौन रहा। उसके बाद एक बार गुरु के चेहरे तथा एक बार प्रतिमा के चेहरे की ओर देखा। प्रतिमा का स्पर्श करके धीरे-धीरे बोला, "उनतीसवें आषाढ़ तक मैं राज-रक्त लाकर इन चरणों में अर्पित करूँगा।"

दसवाँ परिच्छेद

महाराज ने महल लौट कर नियमित राज-काज निबटाया। प्रात:कालीन सूर्यालोक ढक गया है। मेघों की छाया से दिन में ही अंधकार घिर आया है। महाराज अत्यंत अनमने हैं। और दिन नक्षत्रराय राजसभा में उपस्थित रहता है, आज नहीं था। राजा ने उसे बुलावा भेजा, उसने बहाना बना कर कहलवा दिया, उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। राजा स्वयं नक्षत्रराय के कक्ष में जा पहुँचे। नक्षत्रराय मुँह उठा कर राजा के चेहरे की ओर नहीं देख सका। एक लिखा हुआ कागज लेकर दिखाया कि काम में व्यस्त है। राजा बोले, "नक्षत्र, तुम्हें क्या बीमारी हुई है?"

नक्षत्रराय ने कागज को इधर से, उधर से उलट-पलट कर उँगलियों का निरीक्षण करते हुए कहा, "बीमारी? नहीं, ठीक-ठीक बीमारी नहीं - यही जरा-सा काम था - हाँ हाँ, बीमार हो गया था - थोड़ा बीमारी की तरह ही कह सकते हैं।"

नक्षत्रराय बहुत अधिक हडबडा उठा, गोविन्दमाणिक्य अत्यधिक दुखी चेहरे से नक्षत्रराय के चेहरे की ओर देखते रहे। वे सोचने लगे - 'हाय हाय, स्नेह के नीड़ में भी हिंसा घुस गई है, वह साँप की तरह छिपना चाहती है, मुँह दिखाना नहीं चाहती। क्या हमारे जंगल में हिंस्र पशु काफी नहीं हैं, अंत में क्या मनुष्य को भी मनुष्य से डरना होगा, भाई भी भाई के निकट जाकर संशयहीन मन से नहीं बैठ पाएगा! इस संसार में हिंसा-लोभ ही इतना बड़ा हो गया, और स्नेह-प्रेम को कहीं भी ठौर नहीं मिला! यही मेरा भाई है, इसके साथ प्रति दिन एक ही घर में रहता हूँ, एक आसन पर बैठता हूँ, हँस कर बातें करता हूँ - यह भी मेरे पास बैठ कर मन में छुरी सान पर चढाता रहता है!' तब गोविन्दमाणिक्य को संसार हिंस्र जंतुओं से भरे अरण्य के समान लगने

लगा। घने अंधकार में चारों ओर केवल दाँतों और नाखूनों की छटा दिखाई देने लगी। दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए महाराज ने सोचा, 'इस स्नेह-प्रेमहीन, मारकाट भरे राज्य में जीवित रह कर मैं अपनी स्वजाति के, अपने भाइयों के मन में केवल हिंसा लोभ और द्वेष की अग्नि प्रज्वलित कर रहा हूँ - मेरे सिंहासन के चारों ओर मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय संबंधी मेरी ओर देख कर मन-ही-मन मुँह टेढ़ा कर रहे हैं, दाँत घिस रहे हैं, पंक्तिबद्ध भयानक कुत्तों के समान चारों ओर से मुझ पर टूट पडने का अवसर खोज रहे हैं। इसकी अपेक्षा इनके तीक्ष्ण नाखूनों के आघात से छिन्न-विच्छिन्न होकर, इनके रक्त की प्यास बुझा कर यहाँ से दूर चले जाना ही अच्छा है।'

प्रभात के आकाश में गोविन्दमाणिक्य ने जो प्रेम-मुख-छवि देखी थी, वह कहाँ बिला गई!

महाराज उठ खड़े होकर गंभीर स्वर में बोले, "नक्षत्र, आज अपराह्न में हम लोग गोमती के किनारे वाले निर्जन जंगल में घूमने जाएँगे।"

राजा की इस गंभीर आदेश-वाणी के विरुद्ध नक्षत्र के मुँह से बात तक नहीं निकली, बल्कि संशय और आशंका में उसका मन व्याकुल हो उठा। उसे लगने लगा, इतनी देर तक महाराज चुपचाप दोनों नेत्र उसी के मन की ओर लगाए बैठे थे - वहाँ अँधेरे गड्ढों में जो भावनाएँ कीटों के समान किलबिल कर रही थीं, वे मानो अचानक प्रकाश देखते ही चंचल होकर बाहर निकल आई हैं। नक्षत्रराय ने डरते-डरते एक बार राजा के चेहरे की ओर देखा - देखा, उनके चेहरे पर केवल सुगभीर विषण्ण शान्ति का भाव है, वहाँ रोष का लेशमात्र नहीं है। मानव हृदय की कठोर निष्ठुरता देख कर उनके हृदय में केवल गहन शोक विराज रहा था।

दिन ढलने को आ गया। तब भी बादल घिरे हुए हैं। महाराजा नक्षत्रराय को साथ लेकर पैदल अरण्य की ओर चल दिए। अभी संध्या होने में देरी है, किन्तु मेघों के अंधकार में संध्या का भ्रम हो रहा है - कौवे अरण्य में लौट कर लगातार चीत्कार कर रहे हैं, फिर भी दो-एक चीलें अभी तक आकाश में तैर रही हैं। जब दोनों भाइयों ने निर्जन जंगल में प्रवेश किया, तो नक्षत्रराय का शरीर थरथराने लगा। बड़े-बड़े पुराने पेड़ झुण्ड बनाए खड़े हैं - वे एक बात भी नहीं बोल रहे हैं, लेकिन स्थिर होकर जैसे कीटों की पदचाप तक भी सुन रहे हैं; वे केवल अपनी छाया की ओर, नीचे मौजूद अँधेरे की ओर अनिमेष दृष्टि से देख रहे हैं। अरण्य के उस जटिल रहस्य के भीतर जाने में मानो नक्षत्रराय के पैर नहीं उठ रहे हैं - चारों ओर गहन निस्तब्धता की भृकुटी देख कर हृदय धड़कने लगा है; नक्षत्रराय के भीतर अत्यधिक भय और संदेह

उत्पन्न हो गया है; भयानक अदृष्ट के समान मौन राजा इस संध्या-काल में संसार से ओट करके उसे कहाँ लिए जा रहे हैं, कुछ भी तय नहीं कर पाया। निश्चयपूर्वक सोचा, राजा की पकड़ में आ गया है, और राजा ने उसे भारी दण्ड देने के लिए इस जंगल में ला पटका है। नक्षत्रराय साँस रोक कर भागे, तो जान बचे, लेकिन लगा कि जैसे कोई हाथ-पाँव बाँध कर उसे खींचे लिए जा रहा है। किसी भी तरह और मुक्ति नहीं।

जंगल के बीच थोड़ी-सी खाली जगह है। वहाँ एक प्राकृतिक जलाशय जैसा है, वह वर्षा-काल में जल से भरा है। सहसा उसी जलाशय के किनारे घूम कर खड़े होने के बाद राजा बोले, "खड़े हो जाओ।"

नक्षत्रराय चौंक कर खड़ा हो गया। लगा कि उसी क्षण राजा का आदेश सुन कर काल का प्रवाह जैसे थम गया - उसी क्षण जैसे जंगल का वृक्ष जो जहाँ था, झुक कर खड़ा हो गया - नीचे से धरती और ऊपर से आकाश मानो साँस रोके स्तब्ध होकर देखने लगे। कौवों का कोलाहल थम गया, जंगल भर में कोई शब्द नहीं। मात्र वही 'खड़े हो जाओ' शब्द बहुत देर तक जैसे गम् गम् करता रहा - वही 'खड़े हो जाओ' शब्द मानो विद्युत-प्रवाह के समान वृक्ष से वृक्षांतर तक, शाखाओं से प्रशाखाओं तक प्रवाहित होने लगा; जंगल का हरेक पत्ता जैसे उसी शब्द के कंपन के प्रभाव से री री करने लगा। मानो नक्षत्रराय भी पेड़ की तरह स्तब्ध होकर खड़ा हो गया।

तब राजा ने नक्षत्रराय के चेहरे पर मर्मभेदी स्थिर विषण्ण दृष्टि स्थापित करके धीरे-धीरे प्रशांत गंभीर स्वर में कहा, "नक्षत्र, तुम मुझे मार डालना चाहते हो?"

नक्षत्र वज्राहत की भाँति खड़ा रहा, उत्तर देने की कोशिश भी नहीं कर पाया।

राजा ने कहा, "क्यों मार डालोगे, भाई? राज्य के लालच में? क्या तुम समझते हो, राज्य केवल सोने का सिंहासन, हीरों का मुकुट और राजछत्र होता है? जानते हो, इस मुकुट, इस राजछत्र, इस राजदण्ड का भार कितना है? शत-सहस्र लोगों की चिन्ता इस हीरे के मुकुट के नीचे ढक रखी है। राज्य पाना चाहते हो, तो हजारों लोगों के दुःख को अपना दुःख मान कर स्वीकार करो, हजारों लोगों की विपदा को अपनी विपदा मान कर वरण करो, हजारों लोगों के दारिद्र्य को अपना दारिद्र्य समझ कर कन्धों पर ढोओ - जो यह करता है, वही राजा होता है, चाहे वह पर्णकुटी में रहे या महल में। जो व्यक्ति सब लोगों को अपना समझ पाता है, सब लोग उसी के होते हैं। जो संसार के दुखों का हरण करता है, वही संसार का राजा है। जो संसार के रक्त और

अर्थ का शोषण करता है, वह तो दस्यु है - हजारों अभागों के आँसू दिन-रात उसके सिर पर बरस रहे हैं, अभिशाप की उस धारा से कोई राजछत्र उसकी रक्षा नहीं कर सकता। उसके प्रचुर राज-भोगों में शत-शत उपवासियों की क्षुधा छिपी हुई है, अनाथों का दारिद्र्य गला कर वह सोने के अलंकार गढ़वा कर धारण करता है, उसके भूमि तक लटके राज-वस्त्रों में सैकड़ों-सैकड़ों ठण्ड से ठिठुरने वालों के गंदे फटे कंथे हैं। राजा का वध करके राजत्व प्राप्त नहीं होता भाई, संसार को वश में करके राजा बनना पड़ता है।"

गोविन्दमाणिक्य रुक गए। चारों ओर गहन स्तब्धता विराजने लगी। नक्षत्रराय सिर झुकाए चुप रहा।

महाराज ने म्यान से तलवार निकाल ली। नक्षत्रराय के सामने रखते हुए बोले, "भाई, यहाँ आदमी नहीं है, साक्ष्य नहीं है, कोई नहीं है - अगर भाई, भाई की छाती में छुरी भोंकना चाहता है, तो उसके लिए यही जगह है, यही समय है। यहाँ तुम्हें कोई रोकेगा नहीं, कोई तुम्हारी निंदा नहीं करेगा। तुम्हारी और मेरी शिराओं में एक ही रक्त बह रहा है, एक ही पिता, एक ही पितामह का रक्त - तुम उसी रक्त को बहाना चाहते हो, बहाओ, लेकिन आदमियों की बस्ती में मत बहाना। कारण, जहाँ ये रक्त-बिंदु गिरेंगे, वहीं अलक्ष्य रूप में भ्रातृत्व का पवित्र बंधन ढीला पड़ जाएगा। कौन जाने, पाप का अंत कहाँ जाकर हो। पाप का एक बीज जहाँ पड़ जाता है, वहाँ देखते-देखते गोपन रूप में कैसे हजारों वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं, कैसे धीरे-धीरे सुशोभन मानव-समाज जंगल में परिणत हो जाता है, यह कोई नहीं जान पाता। अतएव नगर में, गाँव में, जहाँ निश्चिन्त हृदय से परम स्नेह में भाई भाई के साथ मिल कर रहता है, वहाँ भाइयों के घरों के मध्य भाई का रक्त मत बहाना। इसीलिए आज तुम्हें जंगल में बुला लाया हूँ।"

इतना कह कर राजा ने नक्षत्रराय के हाथ में तलवार पकड़ा दी। तलवार नक्षत्रराय के हाथ से भूमि पर गिर पड़ी। नक्षत्रराय दोनों हाथों से चेहरा ढक कर रोते हुए अवरुद्ध कंठ से बोला, "भैया, मैं दोषी नहीं हूँ - यह बात मेरे मन में कभी भी पैदा नहीं हुई... "

राजा ने उसे आलिंगनबद्ध करके कहा, "वह मैं जानता हूँ। तुम क्या मुझे कभी चोट पहुँचा सकते हो - तुम्हें और लोगों ने बुरी सलाह दी है।"

नक्षत्रराय ने कहा, "मुझे केवल रघुपति यह सलाह दे रहा है।"

राजा बोले, "रघुपति की सोहबत से दूर रहो।"

नक्षत्रराय ने कहा, "बताइए, कहाँ जाऊँ! मैं यहाँ रहना नहीं चाहता। मैं यहाँ से... रघुपति की सोहबत से भाग जाना चाहता हूँ।"

राजा बोले, "तुम मेरे पास ही रहो - और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं - रघुपति तुम्हारा क्या करेगा!"

नक्षत्रराय ने राजा का हाथ कस कर पकड़ लिया, मानो उसे रघुपति के द्वारा खींच लिए जाने की आशंका हो रही है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय जब राजा का हाथ पकड़े जंगल से घर लौट रहा था, तब आकाश से थोड़ा-थोड़ा उजाला आ रहा था - किन्तु नीचे जंगल में घना अंधेरा छा रहा है। मानो अंधकार की बाढ़ आ रही है, केवल पेड़ों की चोटियाँ ऊपर से बची हैं। धीरे-धीरे वे भी डूब जाएँगी; तब अंधकार से ढक कर आकाश पृथिवी एक हो जाएँगे।

राजा महल के रास्ते पर न जाकर मंदिर की ओर गए। मंदिर में संध्या-आरती समाप्त करके रघुपति और जयसिंह एक दीपक जलाए कुटिया में बैठे हैं। दोनों ही चुपचाप अपनी-अपनी चिन्ता में डूबे हैं। दीपक के क्षीण प्रकाश में केवल दोनों के चेहरे का अंधकार दिखाई दे रहा है। नक्षत्रराय रघुपति को देख कर चेहरा नहीं उठा पाया; राजा की परछाईं में खड़ा जमीन की ओर देखता रहा - राजा उसे अपने निकट खींच कर, मजबूती से उसका हाथ पकड़ कर खड़े हो गए और एक बार स्थिर दृष्टि से रघुपति के चेहरे पर देखा। रघुपति ने तीक्ष्ण दृष्टि से नक्षत्रराय पर कटाक्षपात किया। अंत में राजा ने रघुपति को प्रणाम किया, नक्षत्रराय ने भी उनका अनुसरण किया। रघुपति ने प्रणाम ग्रहण करके गंभीर वाणी में कहा, "जयोस्तु - राज्य का कुशल?"

राजा थोड़ा रुक कर बोले, "ठाकुर, आशीर्वाद दीजिए, राज्य का अमंगल न हो। इस राज्य में माँ की सभी संतानें सद्भाव में प्रेम में मिल कर रहें, इस राज्य में कोई भाई को भाई से न छीने, जहाँ प्रेम है, वहाँ कोई हिंसा की प्रतिष्ठा न करे। राज्य के अमंगल की आशंका से ही आया हूँ। पाप-संकल्प के घर्षण से दावानल जल सकता है - रोकिए, शान्ति की वर्षा कीजिए, संसार को शीतलता प्रदान कीजिए।"

रघुपति ने कहा, "देवता का रोषानल जल उठने पर कौन उसे बुझा सकता है? एक अपराधी के कारण उस अग्नि में सहस्रों निरपराधी भस्म हो जाते हैं।"

राजा बोले, "वही तो डर है, उसी कारण तो थरथराहट हो रही है। कोई उस बात को समझाने पर भी क्यों नहीं समझता। क्या आप नहीं जानते, इस राज्य में देवता के नाम पर देवता के विधान का उल्लंघन किया जा रहा है? उसी के चलते अमंगल की आशंका में आज शाम को यहाँ आया हूँ - यहाँ पाप का वृक्ष रोप कर मेरे इस धन-धान्य से भरे सुखमय राज्य में देवता के वज्र का आह्वान मत कीजिए। आपसे यह बात कहे जाता हूँ, यह बात कहने ही मैं आज आया था।"

कहते हुए महाराज ने रघुपति के चेहरे पर अपनी मर्मभेदी दृष्टि स्थापित कर दी। राजा की सुगम्भीर दृढ आवाज रुद्ध तूफान के समान कुटी में कम्पायमान होने लगी। रघुपति ने कोई उत्तर नहीं दिया, जनेऊ पकड़ कर इधर-उधर करने लगा। राजा प्रणाम करके नक्षत्रराय का हाथ पकड़ कर बाहर निकल आए, साथ-साथ जयसिंह भी बाहर आ गया। कुटी में केवल एक दीपक, रघुपति और रघुपति की विशाल परछाईं रह गई।

अब तक आकाश का उजाला छिप चुका है। तारे बादलों में छिप गए हैं। आकाश के कोने-कोने में अंधकार है। पुरवा हवा में उस घने अंधकार में कहीं से कदम्ब के फूलों की गंध आ रही है और जंगल में मर्मर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। राजा इस परिचित मार्ग पर चिन्ता में डूबे जा रहे हैं, सहसा पीछे से सुनाई पड़ा, किसी ने पुकारा - "महाराज!"

राजा ने पीछे मुड कर पूछा, "तुम कौन हो?"

परिचित स्वर ने कहा, "मैं आपका अधम सेवक, मैं जयसिंह। महाराज, आप मेरे गुरु हैं, मेरे स्वामी हैं। आपके अलावा मेरा और कोई नहीं है। जिस प्रकार आप अपने छोटे भाई का हाथ पकड़ कर अंधकार में से लिए जा रहे हैं, उसी प्रकार मेरा हाथ भी पकड़ लीजिए, मुझे भी साथ ले चलिए; मैं गहरे अँधेरे में गिर गया हूँ। किसमें मेरा भला होगा, किसमें बुरा, कुछ भी नहीं जानता। मैं एक बार बाएँ जा रहा हूँ, एक बार दाएँ, मेरा कोई कर्णधार नहीं है।"

उसी अंधकार में आँसू गिरने लगे, कोई नहीं देख पाया, केवल आवेग भरा जयसिंह का आर्द्र स्वर काँपते हुए राजा के कानों में पडता रहा। स्तब्ध स्थिर अंधकार वायु-चंचल समुद्र के समान आंदोलित होने लगा। राजा जयसिंह का हाथ पकड़ कर बोले, "चलो, मेरे संग महल में चलो।"

राजर्षि - Rajashri in Hindi

1. राजर्षि भाग 1
2. राजर्षि भाग 2
3. राजर्षि भाग 3
4. राजर्षि भाग 4